IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सामाजिक आन्दोलनों का भारतीय राजनीति व्यवस्था पर प्रभावः—एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रेनू यादव, शोधार्थी, राजनीति विज्ञान,
एम.डी.यू. रोहतक। (हरियाणा)
रेनू यादव, अतिथि प्रोफसर,
आर0डी0एस0, कालेज, रेवाडी।

शोध संक्षेपः—

सामाजिक आंदोलन एक प्रकार का सामूहिक क्रिया है। सामाजिक आंदोलन व्यक्तियो या संगठनो के विशाल अनौपचारिक समूह होते है। जिसका ध्येय किसी विशिष्ट सामाजिक मुद्दे पर केन्द्रित होता है। भारत में सामाजिक आंदोलन के सबसे बडे महानायक डॉ0 भीम राव अम्बेडकर है। डॉ0 अम्बेडकर का शक्तिशाली सामाजिक आंदोलन विश्व के सबसे प्रभावशाली आंदोलनों में से एक है। बाबा साहेब का आंदोलन भारत देश के पिछडे, शोषित, गरीब, दलित लोगो को उनके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक मानव अधिकार देने के लिए था। यह भारत की सबसे बडी क्रांति थी।

सारांशः—

इस शोध में हम भारत में हुए सामाजिक आन्दोलन जिसका असर राजनीति, सामाजिक, आर्थिक पर पड़ा है। उसका अध्ययन करेंगे। इस शोध में आन्दोलन का प्रभाव प्राचीन तथा वर्तमान जीवन शैली का अध्ययन किया गया है। इस शोध में आन्दोलन का प्रभाव से राजनीति पर कैसे हुआ इसका विवरण भी किया गया है। आन्दोलन का स्वरूप भीड़ इक्ट्ठा होना नहीं है। बल्कि एक बहुउद्देशीय योजना होता है। आन्दोलन यदि सर्वसम्मति तथा बहुपक्षीय हो तो सरकार को भी झुका सकता है। सामाजिक आन्दोलनों के समक्ष न सिर्फ उनके व्यवस्था से असंतुष्ट हैं बल्कि उनके लिए भी जरूरी है। जो राजनीति संस्थाओं की भंगुरता एवं उनके भविष्य को समझते हेतु उक्त व्यवस्था से संतुष्ट है। कोई भी सामाजिक रूप से संवेदनशील व्यक्ति चाहे वो सक्रिय प्रतिभागी हो या फिर शिक्षाविद, चाहे वो राजनीतिक प्रणाली के प्रति सहानुभूतिशील हो या फिर छिद्रान्वेषी, अपने युग के सामाजिक आन्दोलनों को अनदेखा नहीं कर सकता।

राजनीतिक निर्णयों एवं विधि—निर्माण संबंधी हमारा ज्ञान सामाजिक आन्दोलनों को समझे बगैर अधूरा सा रहता हैं।

मुख्य शब्दः– सामाजिक आन्दोलन, नए सामाजिक आन्दोलन, आन्दोलनों का भारत पर प्रभाव।

उद्देश्यः–

1. भारतीय राजनीतिक में आए परिवर्तन का पता लगाना।
2. समाजिक आन्दोलनों के कारण को पहचाना।
3. समाजिक आन्दोलन से देश की जनता पर क्या प्रभाव पड़ा ?

सामाजिक आन्दोलनों का भारतीय राजनीति व्यवस्था में साहित्य की समीक्षाः–

1. चौधरी सुनीता (2016):–विश्व भर में बड़ी संख्या में विधार्थी तथा कार्यालय कर्मी अपने काम पर पांच या छः दिन नही जाते है तथा सप्ताहांत में विश्राम करते है। फिर भी छुट्टी वाले दिन आराम करने वाले व्यक्तियों में से बहुत थोड़े लोगों को घण्टे से अधिक का न होना, पुरूषो तथा महिलाओं को समान कार्य के लिए समान मजदूरी दिया जाना तथा मजदूरो की सामाजिक सुरक्षा तथा पेंशन के अधिकार एवं अन्य बहुत से अधिकार सामाजिक आंदोलनों के द्वारा प्राप्त किए गए है।
2. पासवान लालन कुमार (2010):– आन्दोलन एक प्रकार का सामूहित क्रिया है। सामाजिक आन्दोलन व्यक्तियों और संगठनो के विशाल अनौपचारिक समूह होते है। जिनका ध्येय किसी विशिष्ट सामाजिक मुद्दो पर केन्द्रित होता है आन्दोलन से समाज में परिवर्तन होता है।

सामाजिक आन्दोलन तथा राजनीति आन्दोलनः– अक्सर सामाजिक और राजनीति आन्दोलनों को कमावेश एक ही रूप में लिया जाता है। सभी सामूहिक कार्यवाईयों को सामाजिक या राजनीतिक आन्दोलनों से जोड़ा जाता है। लेकिन वही आन्दोलन जब सार्वजनिक जीवन को प्रभावित करते हुए सामाजिक संबंध के क्षेत्र में प्रवेश करता है तो वह राजनीतिक आन्दोलन का लक्षण बन जाता है। सामाजिक राज्य सत्ता की बजाय स्वतंत्रता का प्रयास अधिक करते हैं। लेखको के अनुसार सामाजिक आन्दोलन का उद्देश्य सामाजिक बदलाव होता है। भागीदार जन सामाजिक न्याय पाने के लिए संगठित होते है। वस्तुतः समाज व राज्य और इसी कारण सामाजिक व राजनीति सत्ता समान नहीं है।

परन्तु समकालीन विश्व में सामाजिक सत्ता एवं राजनीतिक सत्ता के बीच अंतर करना वास्तविकता को छिपाना है। इसी कारण से वर्तमान समय में सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों के बीच अंतर नाममात्र ही है।

नए सामाजिक आन्दोलनः– भागीदारों के वर्ग–प्राधार पर ध्यान केन्द्रित करते हुए मार्क्सवादी सैद्धान्तिक दृष्टिकोण पर आधारित वर्गीकरण, वर्तमान राज्य को उखाड़ फेंकने के अन्तिम उद्देश्यों और उत्पादन संबंध में समग्र परिवर्तन लाने पर लक्ष्य साधने वाले आन्दोलनों को पुराने आन्दोलन कहते है। इसे क्लासीकल आन्दोलन भी कहा जाता है। ये आन्दोलन आमतौर पर राज्य सत्ता पर और भागीदारों की वर्ग–चेतना पर ध्यान केन्द्रित करता है।

इसके विपरित हाल के कुछ आन्दोलन खासकर यूरोप में साठ के दशक में व उनके बाद अधिक प्रभाव में आए है। जैसे – शान्ति आन्दोलन, पर्यावरण आन्दोलन, नारी–आन्दोलन आदि नए आन्दोलन कहलाते है। भारत में समय–समय पर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए जैसे किसान आन्दोलन, पर्यावरण, मानवाधिकार, दलित, आदिवासी के द्वारा चालाए गए आन्दोलन नए सामाजिक आन्दोलन कहलाते है। ये सामाजिक आन्दोलनों के आधुनिक रूप है। जैसे 1830 के दशक में छोटा नागपुर में बिरसा मुण्डा आन्दोलन अपने जीवन में ब्रिटिश राज्य के हस्तक्षेप का विरोध करने हेतु संघर्ष ही था। यही आन्दोलन ने उनको स्वायतता की रक्षा की। मुण्डाओं को अपना खोया हुआ राज्य दोबारा मिल गया।

नए सामाजिक आन्दोलन की विशेषताएंः–

1. नए सामाजिक आन्दोलन वर्ग– आधारित नहीं है। ये बहुवर्गीय होते है। वे इस बात की परवाह नहीं करते कि समाज–वर्ग–विचारधारा पर विभाजित है और तमाम वर्ग प्रतिद्वान्द्वितावादी है। नये सामाजिक आन्दोलन या तो नृजातीय है या फिर राष्ट्रवादी। गेल ओमवेट समकालीन किसान आन्दोलन को नए और इतर–वर्गीय आन्दोलन के रूप में लेती है। इस प्रकार के आन्दोलनों में दुकानदारो और ऊंची व नीची जातियों का समर्थन भी प्राप्त होता है।
2. नए सामाजिक आन्दोलन वेतन, भूमि अथवा सामाजिक आदि मुद्दो को लेकर नहीं चलते। बल्कि समाज में अपनी स्वायतता तथा पहचान के लिए किये जाते है। इसी कारण से गरिमा हेतु दलित आन्दोलन और अपनी स्वायतता हेतु आदिवासी आन्दोलन को नए सामाजिक आन्दोलन के रूप में जाना जाता है।
3. नए सामाजिक आन्दोलन नागरिक समाज के साथ ही परिसीमित और संबंध है। राज्य का विस्तार, समकालीन परिवेश में, बाजार के विस्तार के अनुरूप ही है। राज्य व बाजार की ताकतों के संयुक्त प्रभाव के अधीन समाज दुर्बल हो जाता है। ये आन्दोलन राज्य संगठनो निगरानी एवं सामाजिक नियंत्रण अभिकरणों के बढ़ते विस्तार के खिलाफ समुदाय और समाज की 'आत्म–रक्षा' के मुद्दे उठाए जाते हैं।
4. नए सामाजिक आन्दोलन किसी एक वर्ग अथवा समूह के हित से ही नहीं जुडे होते है। वे किसी वर्ग विशेष पर ध्यान न देते हुए व सभी वर्ग की भलाई को ध्यान में रखकर कार्य करते है। जैसे पर्यावरण आन्दोलन क्योंकि इसमें किसी विशेष वर्ग की भलाई के लिए कार्य नहीं किया जाता है।
5. कुछ विद्वानो के अनुसार नए सामाजिक आन्दोलन लघु आन्दोलन है। वे राज्य सत्ता को हथियाना नहीं चाहते। वे अपनी संगठनात्मक संरचना में लोकतांत्रिक है। आन्दोलन के दौरान दैनिक जीवन से जुड़ी समस्याओं का समाधान किया जाता है।

शोध प्रविधिः– किसान आन्दोलन, महिला अधिकार आन्दोलन, दलित व पिछडा वर्ग आन्दोलन, पर्यावरण बचाओं आन्दोलन।

समाजिक आन्दोलन का भारत पर प्रभावः– भारत एक बहुआबादी, बहुभाषी देश है। यहां समय–समय पर धर्म, भाषा, खान–पान को लेकर विवाद की स्थिति बनी रहती है। यही मुद्दे आन्दोलन का रूप ले लेते है। जैसेः–

1. **असम का बोडोलैण्ड आन्दोलनः–** असम की जनजातियां बोडो, कार्वी तथा आदिवासी 80 के दशक से ही सामूहित नृजातिय लामबंदी मे लगी रहती है। बोड़ो को कार्वी असम राज्य से काटकर अपना–अपना राज्य अलग बना दिए जाने की मांग कर रहे है। पूर्ववर्ती कोकराझार जैसे असम के निचले जिलों में पाई जाती है और कार्बी राज्य के कार्बी आलौंग जिले में निवास करते है। संयाल जनजाति चाय बागान मजदूरी के रूप में बसाये गए थे। ज्यादातर उड़ीसा ओर बिहार राज्यों में इन मजदूरो को काम के अलावा वे गरीब किसानो के रूप में भूमि जोतने का काम भी करते है। आदिवासी लोगों की मांग है कि– सरकारी नौकरियो में आरक्षण के लिहाज से उनके अधिकारों की रक्षा की जाये। बोड़ो और आदिवासी के बीच कई बार हिंसक नृजातीय दंगे की वारदातें भी हो चुकी है। असम की जनजातियों ने अखिल असम छात्रा संघ (आसू) के नेतृत्व में 1979 से 1985 यानि छह वर्ष तक चले असम आन्दोलन में भाग लिया। यह आन्दोलन विदोशियों के विरूध था।

   बोड़ो समझौताः– बोडोलैण्ड आन्दोलन एक लंबा संघर्ष रहा है। इसमें लाखों लोगों ने अपनी जान गवा दी है। वर्तमान में पूर्वोतर राज्यों के उत्थान के लिए BJP सरकार ने ध्यान दिया है। केन्द्रीय सरकार में गृहमंत्री श्री अमित शाह की अध्यक्षता में केन्द्र सरकार, असम सरकार, बोड़ो उग्रवादियों के प्रतिनिधियों ने असम समझौते पर हस्ताक्षर किया है। इस समझौते पर हस्ताक्षर के दौरान असम राज्य की एकता और अखण्डता का ध्यान रखा गया है। इस समझौते पर देशी के PM श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा है कि इससे बोडोलैण्ड लोगों की शिक्षा, संस्कृति पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। यह समझौता 27 जनवरी 1920 को दिल्ली में किया गया। इस समझौते मे केन्द्र सरकार ने बोड़ो लोगो को राजनीति, आर्थिक व सामाजिक अधिकार दिए जाएंगे। इस पर केन्द्र सरकार 1500 करोड़ की वित सहायता देगी। बोड़ो लोगो की पहचान, भाषा, शिक्षा और भूमि अधिकार से जुड़े मुद्दो का समाधन होगा। बोड़ो आन्दोलन के दौरान जिन लोगों की हत्या हुई है उनके परिवार को 5 लाख रूपये का मुआवजा दिया जाएगा।

   - वीटीएडी का नाम बदलकर बोडो लैण्ड टेरिटोरियल रीजन होगा।
   - इस प्रकार मिलकर किया गए समझोते से असम तथा बोडोलैण्ड मिलकर अपने राज्य को अखण्डता, एकता तथा प्रभुत्व को बनाए रखेंगे।

2. **किसान आन्दोलन :–** भारत देश के कृषि प्रधन देश कहा जाता है लेकिन ब्रिटिश सरकार के दौरान किसानों की हालात काफी खराब थी। उन्हे जमींदार और ब्रिटिश लोग काफी प्रताडित करते थे।

किसान लोग इस प्रताडना से परेशान होकर उन्होनें आन्दोलन किये जैसे नील विद्रोह, चम्पारन विद्रोह, तैभागा, मोपला।

आन्दोलन का उदयः– 1920 से 1940 के मध्य अनेक किसान संगठनों का उदय हुआ। 1936 में लखनउ में स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में ऑल इंडिया किसान (ए.आई.के.एस.) की स्थापना हुई। इसलिए विचारक सहजानंद को किसान आन्दोलन का जनक मानते है। मदन मोहन मानवीय के प्रयासो से 1918 में UP में कृषक सभा का गठन किया गया।

प्रमुख किसान आन्दोलनः– नील विद्रोहः इस आंदोलन की शुरूआत 1859–1862 तक हुई। इसमें किसानों को खाद्य फसलों की बजाय नील की खेती के लिए मजबूर किया। इसकी कम कीमत व भूमि पर प्रतिकूल प्रभावों के कारण विद्रोह किया। हिन्दू व मुस्लमानों ने नील नहीं बोने का संकल्प लिया। दीनबंधू मित्रा ने 1860 में नील दर्पण नाटक में इसका प्रस्तुतीकरण किया है।

कुका विद्रोहः– पंजाब में 1871–72 में कूका सिखों द्वारा सशस्त्र विद्रोह था। भगत जवाहर मल ने संगठन बनाया तथा 1872 में बाबा रामसिंह के नेतृत्व किया। जिन्हें काला पानी की सजा दी गई।

चंपारन आन्दोलनः– गांधी जी भारत में आगमन होने पर सबसे पहला आंदोलन चंपारन आंदोलन था। इसकी शुरूआत अप्रैल 1917 में चंपारन में हुई। यह आंदोलन संगठित आंदोलन था। किसानों को 3/10 वे हिस्से पर नील की खेती अनिवार्य तथा कम किमत रखी। इसे तीन कठिया भी कहा जाता है। चंपारन कृषि अधिनियम 1918 के बाद आंदोलन वापस लिया गया।

खेड़ा आंदोलनः– 1918 में गुजरात के खेड़ा जिला में फसल खराब होने के कारण किसान कर देने में असमर्थ थे लेकिन जंमीदार किसानों से कर वसूलने के लिए जबरदस्ती कर रहे थे। इसकी अध्यक्षता सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा गांधी जी ने की।

तिभागा आंदोलनः– 1946 में पश्चिमी बंगाल में जोतदारों के विरूध बटाइदारों का आंदोलन था। तीन भाग में दो भाग लगान को कम करने के लिए था। इस आंदोलन के नेता कम्पाराम सिंह तथा भवन सिंह ने किया।

तेलगांना आंदोलनः– 1946 में रैययतवाड़ी व्यवस्था, स्थानीय शासको तथा जंमीदारों के विरूध साम्यवादी आंदोलन था।

आजादी के बाद के आंदोलन (भूटान आंदोलन):– आजादी के बाद 1951 में विनोवा भावे के द्वारा आंदोलन नहीं अपितु बहुउद्देश्य क्रांति है। यह आंदोलन UP में शुरू हुआ लेकिन ओडिसा में अधिक सफल रहा।

नक्सलवादी आन्दोलनः– पहला कृषक आंदोलन नक्सली आंदोलन था जो चारू मजूमदार ने चलाया। 1967 में बंगाल में नक्सलवादी क्षेत्र में शुरू हुआ। इसमें सिलीगुड़ी उपमण्डल के किसानों ने भूस्वामियों की जमीन पर कब्जा कर लिया। जमीन के प्रलेख जला दिये तथा जम्मीदारों को मृत्युदण्ड देने की घोषणा की।

इस प्रकार किसानों की दशा सुधारने तथा उनको अपने हक तथा जमीन का अधिकार दिलाने के लिए काफी प्रयास किये गए। समय तथा परिस्थितियां बदलने से किसानों को जमीन का मालिकाना हक दिलाया गया तथा जंमीदारो के चंगुल से छुटकारा दिलाया गया।

पिछड़ा वर्ग आन्दोलनः– उत्तर भारत के मुकाबले दक्षिण भारत में पिछड़ो वर्ग काफी पहले संघटित हो चुके थे। उन्होंने सरकारी नौकरियों में न केवल आरक्षण प्राप्त कर लिया अपितु वे सामाजिक आन्दोलन में भी संघटित हो गये। नृजातीकरण के माध्यम से दक्षिण भारत के पिछडे वर्गों ने ब्राह्मणवादी प्रभुत्व पर सवाल उठाया। अन्य वर्गो में दरअसल, विषमजातीय जाति–समूह आते हैं जिनकी सामाजिक व आर्थिक दशाओं तथा राजनीतिक भागीदारी में अंतर पाए जाते है। यहां कि ऐसे अन्य–पिछड़े वर्ग जिनमें सामाजिक पदानुक्रम में उनके स्थान के लिहाज से साझा अभिलक्षण पाए जाते है। वे एक–दूसरे से भिन्न होते है। सभी मध्यवर्ती जातियां जिन्हें अब अन्य–पिछडे वर्गो के रूप में जाना जाता है।

अन्य पिछडा वर्ग वे जातियां है जो शैक्षिक और सामाजिक रूप में पिछडी हुए है जरूरी नहीं कि वे आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से भी पिछडी हो। किसी भी समुदाय को अन्य पिछडा वर्ग के रूप में पहचान प्राप्त करने के लिए पर्याप्त राजनीतिक जोड़ता और पैबंदबाजी करनी पड़ती है। जैसे 1999 में राजस्थान सरकार और 2000 में उत्तर प्रदेश सरकार ने जाटों को भी अन्य पिछडे वर्गो की सूची में शामिल कर लिया।

आरक्षण की राजनीतिः– केन्द्र सरकार की नौकरियों में अन्य–पिछडे वर्गों हेतु 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश करने वाली 1990 में बी.पी.सिंह सरकार द्वारा 'मण्डल आयोज रिपोर्ट' लागू किए जाने से आरक्षण भारतीय राजनीति में एक राष्ट्रीय मुद्दा बन गया। 1990 में BJP सरकार द्वारा 'मण्डल आयोग' का गठन पिछडे वर्ग के नेताओं के दबाव और उनकी पैबन्दबाजी का परिणाम था।

पिछडे वर्गो हेतु आरक्षण की मांग संविधान सभा में पंजाब राव देशमुख द्वारा उठाई गई। जिस प्रकार डॉ. भीमराव अम्बेड़कर ने इसी प्रकार की मांग अनुसूचित जातियों के लिए उठाई थी। इस मुद्दे को सामने लोने के लिए 26 जनवरी 1950 को 'अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ' की स्थापना की। मण्डल आयोग प्रथम पिछडा–वर्ग आयोग की रिपोर्ट तथ काका कालेलकर आयोग रिपोर्ट को स्वीकृत करवाने हेतु पिछडे वर्ग के नेताओं द्वारा अविरोधी मांग का परिणाम था। परन्तु आयोग की इस रिपोर्ट को रद्द कर दिया। नए–नए समूहों द्वारा अन्य पिछडे वर्गो के रूप में स्वयं को मान्यता दिए जाने हेतु मांग किया जाना अभी भी जारी है। कोई भी समूह अन्य–पिछडे वर्ग के रूप में पहचान दिला पाता है या नहीं, एक राजनीति प्रश्न है, यह राजनीतिक कारकों पर निर्भर करता है।

अन्य–पिछड़ा वर्ग की जातिः– जाट, यादव, कुर्मी, गुज्जर, काप्पू, काम्मा, रेड्डी, लिगांयत, वोकलिग्गा, पटेल, कोली, मराठा आदि है।

निष्कर्षः– लोकतंत्र और सामाजिक आन्दोलन एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह गहरे जुडे होते है। सामाजिक आन्दोलन सामूहिक इच्छा की ही अभिव्यक्ति होते है। ये लोकतंत्र की जान होते है। लोगों की राजनीति के बगैर लोकतंत्र खोखला है। अधिकतर पार्टियां अपने भीतर बिना किसी लोकतांत्रिक निर्णयन प्रक्रिया के बगैर काम कर रही है। लोग सामाजिक आन्दोलनों के रूप में सामूहित कार्यवाइयों के माध्यम से अपनी आकांक्षाओं व मत को जनता के सामन प्रस्तुत और सुस्पष्ट करते है। सभी आन्दोलन राजनेताओं को सचेत रखते है और सरकार पर दबाव बनाते है। कुछ आन्दोलन काफी हद तक समाज में लोकतंत्रीकरण को बढ़ावा देने, निर्णयन प्रक्रिया में भाग लेने हेतु लोगों को लामबंद किए जाने और उनका राजनीतिकरण किए जाने में सपफल रहे है। सामाजिक आन्दोलनों की प्रकृति लोकतंत्रा को मजबूत करने न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती ही है।

संदर्भ सूचीः–

1. डा0 के0 एल0 खुराना।
2. डा0 भूषण फडतरे प्रा0 कल्याण चव्हाण।
3. मुकेश बरनवाल एवं डा0 भावना चौहान।
4. https://www.egyankosh.ac.in
5. https://philoid.com
6. https://blog.ipleaders.in